



शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मि समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)

3049-2890 (Print)

IIFS Impact Factor-4.0

Vol.-3; issue-1 (Jan.-March) 2026

Page No- 370-375

©2026 Shodhaamrit

<https://shodhaamrit.gyanvividha.com>

Author's :

1. प्रकाश कुमार

(शोधार्थी) इतिहास विभाग, भूपेंद्र नारायण
मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

2. डॉ. अमरेन्द्र कुमार

शोध पर्यवेक्षक, वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, भूपेंद्र नारायण मंडल
विश्वविद्यालय, मधेपुरा

Corresponding Author :

प्रकाश कुमार

(शोधार्थी) इतिहास विभाग, भूपेंद्र नारायण
मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

भारत में मानवाधिकार आंदोलन और बाल-अधिकार :

एक ऐतिहासिक अध्ययन

सारांश : भारत में मानवाधिकार आंदोलन का विकास एक दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय आंदोलन और स्वतंत्रता के बाद हुए संवैधानिक एवं विधिक परिवर्तनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस व्यापक आंदोलन में बाल-अधिकार का प्रश्न विशेष महत्व रखता है, क्योंकि बच्चे शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत कमजोर होते हैं। भारतीय समाज में बाल श्रम, बाल विवाह, अशिक्षा, शोषण, भेदभाव और शिक्षा से वंचित रहने जैसी समस्याएँ लंबे समय तक बनी रही हैं। आधुनिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा शिक्षा के प्रसार ने बच्चों की स्थिति को सुधारने की आवश्यकता को सामने रखा। औपनिवेशिक काल में बाल शिक्षा और सामाजिक सुधार से जुड़े प्रयासों ने बाल-अधिकार की प्रारंभिक चेतना को विकसित किया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने बच्चों के लिए समानता, शिक्षा, शोषण से सुरक्षा और विशेष संरक्षण की व्यवस्था की। अनुच्छेद 21क के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया तथा अनुच्छेद 24 के माध्यम से बच्चों को खतरनाक कार्यों में रोजगार से संरक्षण प्रदान किया गया।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1989 में संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार अभिसमय ने बच्चों को स्वतंत्र अधिकार-धारी के रूप में मान्यता देने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत ने 1992 में इस अभिसमय का अनुमोदन किया, जिसके बाद बाल-अधिकार से संबंधित नीतियों, कानूनों और संस्थागत व्यवस्थाओं को और व्यापक आधार मिला। बाल श्रम, बाल विवाह, शिक्षा, किशोर न्याय और बाल संरक्षण से संबंधित विधिक प्रयासों ने मानवाधिकार आंदोलन को नई दिशा प्रदान की। प्रस्तुत अध्ययन भारत में बाल-अधिकार के ऐतिहासिक विकास को मानवाधिकार आंदोलन के व्यापक संदर्भ में समझने का प्रयास करता है। इसमें सामाजिक सुधार आंदोलनों, बाल शिक्षा, बाल श्रम, बाल विवाह, संवैधानिक प्रावधानों तथा विधिक संरक्षण को प्रमुख आधार बनाकर यह विश्लेषण किया गया है कि भारत में बाल-अधिकार की अवधारणा सामाजिक सुधार के प्रश्न से विकसित होकर आधुनिक मानवाधिकार विमर्श का महत्वपूर्ण हिस्सा किस प्रकार बनी।

कुंजी शब्द : मानवाधिकार, बाल-अधिकार, बाल श्रम, बाल शिक्षा, बाल विवाह, संविधान, सामाजिक सुधार, बाल संरक्षण।

प्रस्तावना : मानवाधिकार आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की आधारभूत अवधारणा है। मानव होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को गरिमा, समानता, स्वतंत्रता, सुरक्षा और विकास का अधिकार प्राप्त है। इन अधिकारों का महत्व बच्चों के संदर्भ में और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि बचपन व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और बौद्धिक विकास की आधारभूत अवस्था है। इस अवस्था में प्राप्त शिक्षा, पोषण, स्वास्थ्य, सुरक्षा और पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण व्यक्ति के भविष्य को प्रभावित करते हैं। इसलिए बच्चों को केवल परिवार की जिम्मेदारी मानने के बजाय उनके अधिकारों और संरक्षण को समाज तथा राज्य की जिम्मेदारी के रूप में देखना मानवाधिकार

चेतना के विकास का महत्वपूर्ण परिणाम है।

भारत में बच्चों की स्थिति और उनके अधिकारों के विकास को केवल आधुनिक मानवाधिकार की अवधारणा के आधार पर नहीं समझा जा सकता। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही बच्चों की शिक्षा, संस्कार और व्यक्तित्व निर्माण की विभिन्न परंपराएँ रही हैं। गुरुकुल, आश्रम तथा पारिवारिक शिक्षा व्यवस्था में बच्चों के ज्ञान, अनुशासन और नैतिक विकास पर बल दिया जाता था। हालांकि उस समय आधुनिक अर्थों में बाल-अधिकार की कोई स्वतंत्र राजनीतिक और विधिक अवधारणा विकसित नहीं हुई थी। आधुनिक काल में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के साथ बच्चों की स्थिति से जुड़े प्रश्न सार्वजनिक विमर्श का हिस्सा बनने लगे।

औपनिवेशिक काल में बाल विवाह, बाल श्रम, बालिकाओं की शिक्षा की कमी, गरीबी और सामाजिक असमानता जैसी समस्याओं ने बच्चों के जीवन को प्रभावित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनों ने इन समस्याओं को समाज के सामने रखा। शिक्षा के प्रसार तथा बाल विवाह जैसी सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध सुधारवादी प्रयासों ने बच्चों के अधिकारों के प्रति प्रारंभिक चेतना विकसित की। बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलन के विस्तार के साथ शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता के प्रश्नों को व्यापक राजनीतिक संदर्भ मिला। इस दौर में बच्चों की शिक्षा और उनके बेहतर भविष्य को राष्ट्र निर्माण से जोड़कर देखा जाने लगा।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने बाल-अधिकारों को महत्वपूर्ण संवैधानिक आधार प्रदान किया। संविधान में समानता, शिक्षा, शोषण से सुरक्षा तथा बच्चों के विकास से संबंधित प्रावधान किए गए। अनुच्छेद 21 के माध्यम से 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया तथा अनुच्छेद 24 में बच्चों को कारखानों, खानों और अन्य खतरनाक कार्यों में नियोजन से सुरक्षा प्रदान की गई। इसके बाद बाल श्रम, बाल विवाह, शिक्षा, किशोर न्याय और बाल संरक्षण से संबंधित विभिन्न कानूनों ने बाल-अधिकार की विधिक व्यवस्था को और मजबूत किया। इस प्रकार भारत में बाल-अधिकार का विकास सामाजिक सुधार से संवैधानिक अधिकार और आधुनिक मानवाधिकार विमर्श तक पहुँचने वाली एक दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य भारत में बाल-अधिकार के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना तथा सामाजिक सुधार आंदोलनों, राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक प्रावधानों और विधिक उपायों के माध्यम से बाल शिक्षा, बाल श्रम, बाल विवाह एवं बाल संरक्षण में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करना है।

शोध प्रश्न : भारत में सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक विकास तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार चेतना ने बाल-अधिकार के ऐतिहासिक विकास को किस प्रकार प्रभावित किया?

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें भारत में बाल-अधिकार के विकास को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और विधिक संदर्भों में समझने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में भारतीय संविधान, बाल श्रम, बाल विवाह, शिक्षा तथा किशोर न्याय से संबंधित अधिनियम, सरकारी रिपोर्ट और अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में इतिहास, मानवाधिकार, बाल-अध्ययन, सामाजिक सुधार और भारतीय समाज से संबंधित पुस्तकें, शोध-पत्र तथा रिपोर्टें शामिल हैं। प्राप्त तथ्यों का आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

साहित्य समीक्षा : भारत में मानवाधिकार और बाल-अधिकार के विकास पर अनेक इतिहासकारों, समाजशास्त्रियों और विधिवेत्ताओं ने अध्ययन किया है। आशीष बाजपेयी की भारत में बाल-अधिकार : कानून, नीति और व्यवहार में भारतीय बाल-अधिकारों के संवैधानिक, विधिक और नीतिगत पक्षों का विस्तृत अध्ययन मिलता है। उपेंद्र बक्शी ने मानवाधिकारों को सामाजिक न्याय और अधिकारों के व्यापक संदर्भ में समझने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र तथा यूनिसेफ की रिपोर्टों में बाल शिक्षा, बाल श्रम, बाल संरक्षण और बाल विकास से संबंधित अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं।

भारतीय संदर्भ में सामाजिक सुधार आंदोलनों, बाल विवाह, बाल श्रम और शिक्षा के विकास पर उपलब्ध साहित्य यह स्पष्ट करता है कि बाल-अधिकार की चेतना धीरे-धीरे विकसित हुई। संविधान, शिक्षा का अधिकार, बाल श्रम और किशोर न्याय से संबंधित कानूनों पर भी पर्याप्त अध्ययन उपलब्ध है। हालांकि अधिकांश अध्ययनों में किसी एक समस्या या कानून पर विशेष ध्यान दिया गया है। भारत में मानवाधिकार आंदोलन के व्यापक ऐतिहासिक विकास के साथ बाल-अधिकार को जोड़कर सामाजिक सुधार से संवैधानिक एवं विधिक संरक्षण तक की पूरी प्रक्रिया का समग्र ऐतिहासिक अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध इसी शोध-अंतर को ध्यान में रखते हुए बाल शिक्षा, बाल श्रम, बाल विवाह और बाल संरक्षण के प्रमुख प्रतिदर्शों के माध्यम से बाल-अधिकार के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण करता है।

बाल-अधिकार की अवधारणा : बाल-अधिकार से आशय उन सभी अधिकारों से है, जो प्रत्येक बच्चे को उसके शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक और बौद्धिक विकास के लिए प्राप्त होने चाहिए। सामान्यतः 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को बच्चा माना जाता है। बाल्यावस्था मानव जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था है, क्योंकि इसी समय व्यक्ति के व्यक्तित्व, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक व्यवहार की आधारभूत संरचना विकसित होती है। आधुनिक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार अभिसमय, 1989 ने बच्चों को केवल संरक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्र अधिकार-धारी के रूप में स्थापित किया। इसमें भेदभाव से मुक्ति, जीवन और विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा बच्चों की भागीदारी जैसे अधिकारों को मान्यता दी गई है।

बाल-अधिकारों को व्यापक रूप से जीवन और विकास, संरक्षण, शिक्षा तथा भागीदारी के अधिकारों के रूप में समझा जा सकता है। ये अधिकार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। शिक्षा से वंचित बच्चा अपने विकास के अवसरों से पीछे रह

जाता है, जबकि बाल श्रम उसके स्वास्थ्य, शिक्षा और सामान्य जीवन को प्रभावित करता है। इसी प्रकार बाल विवाह भी बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वतंत्र विकास के अवसरों को सीमित करता है। इस दृष्टि से बाल-अधिकार मानवाधिकारों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। बच्चों को परिवार, समाज और राज्य से विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है, लेकिन संरक्षण का अर्थ उनकी स्वतंत्रता, गरिमा और विचारों की उपेक्षा करना नहीं है। बाल-अधिकार की मूल भावना प्रत्येक बच्चे को सुरक्षित, सम्मानजनक, समान अवसरों से युक्त और गरिमापूर्ण जीवन प्रदान करना है।

भारत में बाल-अधिकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : भारत में बाल-अधिकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए बच्चों की सामाजिक स्थिति, पारिवारिक व्यवस्था, शिक्षा की परंपरा और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। प्राचीन भारतीय समाज में बाल जीवन को परिवार और समुदाय की व्यवस्था से जोड़ा गया था। शिक्षा, संस्कार और अनुशासन को बालक के विकास का महत्वपूर्ण आधार माना जाता था। गुरुकुल और आश्रम परंपरा में शिक्षा के माध्यम से ज्ञान, व्यवहार और सामाजिक दायित्वों की समझ विकसित करने पर बल दिया जाता था। हालांकि शिक्षा की सुविधा सभी सामाजिक वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं थी। जाति, लिंग और सामाजिक स्थिति के आधार पर शिक्षा और अवसरों में अंतर दिखाई देता था। मध्यकाल में भी बच्चों का जीवन मुख्यतः परिवार, समुदाय और तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित रहा। इस दौर में आधुनिक अर्थों में बाल-अधिकार की स्पष्ट अवधारणा विकसित नहीं हुई थी।

भारत में आधुनिक बाल-अधिकार की चेतना का विकास मुख्य रूप से औपनिवेशिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों और आधुनिक शिक्षा के प्रसार के साथ हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिराव फुले, सावित्रीबाई फुले और अन्य समाज सुधारकों ने शिक्षा तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध महत्वपूर्ण प्रयास किए। विशेष रूप से बालिकाओं की शिक्षा का प्रश्न सामाजिक सुधार का महत्वपूर्ण विषय बना। सावित्रीबाई फुले ने बालिकाओं और महिलाओं की शिक्षा के लिए कार्य करके उस समय की सामाजिक धारणाओं को चुनौती दी। इसी काल में बाल विवाह जैसी प्रथाओं के विरुद्ध भी सामाजिक और वैचारिक आंदोलन विकसित हुए। इन प्रयासों से यह विचार मजबूत हुआ कि बच्चों की शिक्षा, सुरक्षा और सम्मान केवल परिवार का निजी विषय नहीं, बल्कि समाज और राज्य की भी जिम्मेदारी है। इस प्रकार सामाजिक सुधार आंदोलनों ने भारत में आधुनिक बाल-अधिकार की चेतना के विकास के लिए आधार तैयार किया, जिसने आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन और स्वतंत्र भारत की संवैधानिक व्यवस्था में अधिक स्पष्ट रूप ग्रहण किया।

बाल शिक्षा और मानवाधिकार आंदोलन : बाल-अधिकार के विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। शिक्षा केवल ज्ञान और कौशल प्राप्त करने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति में अपने अधिकारों, कर्तव्यों और सामाजिक स्थिति के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न करती है। इसी कारण बाल शिक्षा का विस्तार मानवाधिकार आंदोलन के व्यापक विकास से जुड़ा हुआ है। औपनिवेशिक भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार के साथ समाज में शिक्षा के महत्व को लेकर नई चेतना विकसित हुई। सामाजिक सुधारकों ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन माना। विशेष रूप से बालिकाओं की शिक्षा को लेकर उस समय अनेक सामाजिक बाधाएँ थीं, फिर भी सावित्रीबाई फुले सहित कई सुधारकों और संस्थाओं ने शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयास किए। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान शिक्षा को राष्ट्रीय जागरण और सामाजिक पुनर्निर्माण से जोड़ा गया। महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा की अवधारणा के माध्यम से शिक्षा को जीवन, श्रम और व्यावहारिक अनुभवों से जोड़ने पर बल दिया। उनके विचार में शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना या रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक विकास में सहायता करना भी था।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने बच्चों की शिक्षा और विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया। संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों तथा बाद के संवैधानिक विकास के माध्यम से बच्चों की शिक्षा को अधिक स्पष्ट आधार मिला। 86वें संविधान संशोधन, 2002 के बाद अनुच्छेद 21क के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का संवैधानिक प्रावधान किया गया। इसके बाद बालकों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 बाल शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम बना। यह अधिनियम 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करता है तथा 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। इस प्रकार भारत में बाल शिक्षा का विकास सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना से आगे बढ़कर संवैधानिक अधिकार और विधिक दायित्व के रूप में स्थापित हुआ।

बाल श्रम और मानवाधिकार : भारत में बाल-अधिकार आंदोलन का एक प्रमुख पक्ष बाल श्रम की समस्या रही है। गरीबी, पारिवारिक आर्थिक दबाव, शिक्षा की कमी, बेरोजगारी और असंगठित क्षेत्र के विस्तार जैसी परिस्थितियों के कारण लंबे समय तक अनेक बच्चे विभिन्न प्रकार के श्रम में लगे रहे। बाल श्रम को केवल रोजगार या आर्थिक समस्या के रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि इसका सीधा संबंध बच्चे के शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, विश्राम, विकास और गरिमा के अधिकार से है। कम उम्र में काम करने के कारण बच्चों की शिक्षा बाधित होती है और उनके शारीरिक तथा मानसिक विकास पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसी कारण बाल श्रम के विरुद्ध संघर्ष मानवाधिकार और बाल-अधिकार आंदोलन का महत्वपूर्ण हिस्सा बना। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, खानों या अन्य जोखिमपूर्ण कार्यों में नियोजित करने पर रोक का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही संविधान के अन्य प्रावधानों ने बच्चों के स्वास्थ्य, विकास और शोषण से सुरक्षा के लिए व्यापक आधार प्रदान किया।

स्वतंत्रता के बाद बाल श्रम की समस्या से निपटने के लिए विभिन्न विधिक और नीतिगत उपाय किए गए। बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कानून था, जिसके माध्यम से कुछ व्यवसायों और प्रक्रियाओं में बच्चों के नियोजन पर प्रतिबंध तथा अन्य क्षेत्रों में उनके काम की परिस्थितियों को विनियमित करने का प्रयास किया गया। 2016 के संशोधन के बाद कानून का नाम बालक और किशोर श्रम (प्रतिषेध और विनियमन)

अधिनियम, 1986 किया गया। वर्तमान व्यवस्था में बच्चों के सभी व्यवसायों में नियोजन पर सामान्य प्रतिबंध तथा किशोरों के खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं में नियोजन पर रोक का प्रावधान है। इस प्रकार भारत में बाल श्रम के प्रश्न पर दृष्टिकोण धीरे-धीरे केवल श्रम की परिस्थितियों के नियमन से आगे बढ़कर बच्चों की शिक्षा, सुरक्षा, स्वास्थ्य, विकास और गरिमा को अधिकार के रूप में स्वीकार करने की दिशा में विकसित हुआ।

बाल विवाह और बाल-अधिकार : बाल विवाह भारतीय समाज में बच्चों, विशेषकर बालिकाओं के अधिकारों से जुड़ी एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामाजिक समस्या रही है। कम आयु में विवाह होने से बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यक्तिगत विकास और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता प्रभावित होती है। बालिकाओं के मामले में इसका प्रभाव अधिक व्यापक हो सकता है, क्योंकि विवाह के बाद उनकी शिक्षा जारी रहने की संभावना कम हो जाती है और कम उम्र में पारिवारिक जिम्मेदारियों बढ़ जाती हैं। लंबे समय तक गरीबी, सामाजिक परंपराएँ, लैंगिक असमानता और सुरक्षा से जुड़ी धारणाएँ बाल विवाह के बने रहने के प्रमुख सामाजिक कारणों में रही हैं। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनों ने इस समस्या को सार्वजनिक बहस का विषय बनाया। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर तथा अन्य समाज सुधारकों के प्रयासों से सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जनमत विकसित हुआ। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में बाल विवाह का प्रश्न सामाजिक सुधार और महिला शिक्षा से जुड़े व्यापक विमर्श का हिस्सा बन गया। इसी क्रम में बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929 एक महत्वपूर्ण विधिक प्रयास था, जिसने बाल विवाह को नियंत्रित करने की दिशा में कानूनी आधार प्रदान किया।

स्वतंत्रता के बाद बाल-अधिकार और लैंगिक समानता की अवधारणा के विस्तार के साथ बाल विवाह को केवल सामाजिक प्रथा के रूप में नहीं, बल्कि बच्चों के अधिकारों से जुड़े प्रश्न के रूप में देखा जाने लगा। बदलती सामाजिक परिस्थितियों और पूर्व कानून की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 लागू किया गया। इस कानून का उद्देश्य बाल विवाह की रोकथाम तथा उससे जुड़े मामलों में बच्चों को कानूनी संरक्षण प्रदान करना है। बाल विवाह का प्रभाव केवल विवाह की आयु तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, विकास, स्वतंत्रता और गरिमा जैसे अनेक अधिकारों को प्रभावित करता है। इसलिए बाल विवाह के विरुद्ध संघर्ष को भारत में विकसित हुए व्यापक मानवाधिकार और बाल-अधिकार आंदोलन के महत्वपूर्ण हिस्से के रूप में समझा जा सकता है। सामाजिक जागरूकता, शिक्षा, कानून का प्रभावी पालन और बच्चों के अधिकारों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण इस समस्या के समाधान के महत्वपूर्ण आधार हैं।

भारतीय संविधान और बाल-अधिकार : भारतीय संविधान ने बाल-अधिकारों के विकास को एक मजबूत संवैधानिक आधार प्रदान किया। संविधान के मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में बच्चों के जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा और विकास से संबंधित अनेक प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 15 राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने की अनुमति देता है। अनुच्छेद 21 प्रत्येक व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा से संबंधित है, जिसके व्यापक न्यायिक विकास ने बच्चों के जीवन और गरिमा को भी महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया है। अनुच्छेद 21क 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 24 में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, खानों या अन्य जोखिमपूर्ण कार्यों में नियोजित करने पर रोक लगाई गई है। इन प्रावधानों से स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं ने बच्चों को समाज के ऐसे वर्ग के रूप में देखा, जिन्हें विशेष सुरक्षा और विकास के अवसरों की आवश्यकता है।

राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 39 बाल-अधिकारों की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। इसके अंतर्गत राज्य को यह सुनिश्चित करने की दिशा में कार्य करने का निर्देश दिया गया है कि बच्चों को स्वस्थ विकास के अवसर मिलें और उनकी कम उम्र का दुरुपयोग न हो। साथ ही बच्चों को आर्थिक आवश्यकता के कारण उनकी आयु या शक्ति के प्रतिकूल कार्यों में जाने से बचाने की बात कही गई है। अनुच्छेद 39 के ये प्रावधान बाल श्रम, शोषण और असुरक्षित परिस्थितियों से बच्चों की रक्षा की संवैधानिक भावना को स्पष्ट करते हैं। इसके अतिरिक्त संविधान में समानता, सामाजिक न्याय और कमजोर वर्गों की सुरक्षा से संबंधित प्रावधान भी बच्चों के अधिकारों के व्यापक संरक्षण का आधार बनते हैं। इस प्रकार भारतीय संविधान ने बाल-अधिकार को केवल पारिवारिक या सामाजिक जिम्मेदारी तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से जोड़ते हुए राज्य की जिम्मेदारी का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया।

अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आंदोलन और भारत : बाल-अधिकारों के विकास में अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मानव गरिमा, समानता और स्वतंत्रता को वैश्विक स्तर पर स्वीकार करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसी क्रम में 1948 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार किया गया। इस घोषणा ने प्रत्येक व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से जुड़े अधिकारों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्रदान करने का आधार तैयार किया। इसके बाद बच्चों की विशेष आवश्यकताओं और उनकी संवेदनशील सामाजिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनके अधिकारों के लिए अलग-अलग अंतरराष्ट्रीय प्रयास किए गए। इससे यह विचार मजबूत हुआ कि बच्चों को सामान्य मानवाधिकारों के साथ-साथ उनकी आयु और आवश्यकताओं के अनुरूप विशेष संरक्षण तथा विकास के अवसर भी प्राप्त होने चाहिए। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आंदोलन ने बाल शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, शोषण से मुक्ति और सम्मानजनक जीवन को बाल-अधिकारों के महत्वपूर्ण पक्ष के रूप में स्थापित करने में योगदान दिया।

1989 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने बाल अधिकार अभिसमय को स्वीकार किया। यह बच्चों के नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को व्यापक रूप से मान्यता देने वाला महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय दस्तावेज है। भारत ने दिसंबर 1992 में इस अभिसमय का अनुमोदन किया। इसके बाद भारत में बाल-अधिकारों से

संबंधित नीतियों, कानूनों और संस्थागत व्यवस्थाओं में अंतरराष्ट्रीय मानकों का प्रभाव अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगा। बाल अधिकार अभिसमय ने यह दृष्टिकोण मजबूत किया कि बच्चे केवल माता-पिता या राज्य की देखभाल के विषय नहीं हैं, बल्कि वे स्वयं स्वतंत्र अधिकार-धारी हैं। जीवन और विकास, भेदभाव से मुक्ति, संरक्षण, शिक्षा तथा अपनी बात रखने और निर्णयों में भागीदारी जैसे अधिकारों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विशेष महत्व मिला। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आंदोलन ने भारत में बाल-अधिकार की अवधारणा को व्यापक बनाने तथा सामाजिक कल्याण की सोच से आगे बढ़ाकर अधिकार और गरिमा आधारित दृष्टिकोण विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बाल संरक्षण की संस्थागत व्यवस्था : स्वतंत्रता के बाद भारत में बाल-अधिकारों की सुरक्षा और बच्चों के कल्याण के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं की भूमिका धीरे-धीरे बढ़ी। बाल संरक्षण को केवल परिवार की जिम्मेदारी न मानकर राज्य और समाज की साझा जिम्मेदारी के रूप में देखा जाने लगा। इसी क्रम में बाल कल्याण समितियाँ, जिला स्तर की बाल संरक्षण इकाइयाँ, किशोर न्याय से संबंधित संस्थाएँ तथा राष्ट्रीय और राज्य स्तर के बाल अधिकार आयोग विकसित किए गए। इन संस्थाओं का उद्देश्य बच्चों को शोषण, हिंसा, उपेक्षा, बाल श्रम, बाल विवाह और अन्य जोखिमपूर्ण परिस्थितियों से सुरक्षा प्रदान करना है। राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग जैसी संस्थाएँ बच्चों से संबंधित अधिकारों के संरक्षण की निगरानी, शिकायतों की जाँच, जागरूकता कार्यक्रमों के संचालन तथा सरकार को आवश्यक सुझाव देने का कार्य करती हैं। इस संस्थागत व्यवस्था के विकास से बाल-अधिकारों का प्रश्न सामाजिक सुधार और जन-जागरूकता से आगे बढ़कर प्रशासनिक तथा कानूनी व्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया।

किशोर न्याय व्यवस्था ने भी बाल संरक्षण की अवधारणा को अधिक व्यापक बनाया। कानून के संपर्क में आने वाले बच्चों के साथ वयस्क अपराधियों जैसा व्यवहार करने के बजाय उनकी आयु, परिस्थितियों और आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अलग प्रक्रिया अपनाने पर बल दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य बच्चों को दंडित करने के बजाय उनके संरक्षण, सुधार, पुनर्वास और समाज में पुनर्स्थापन की दिशा में कार्य करना है। इसके अंतर्गत देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों तथा कानून के साथ संघर्ष की स्थिति में आए बच्चों के लिए अलग-अलग संस्थागत व्यवस्थाएँ विकसित की गई हैं। बाल कल्याण समितियाँ ऐसे बच्चों की देखभाल, संरक्षण और पुनर्वास से संबंधित मामलों पर विचार करती हैं, जबकि किशोर न्याय बोर्ड कानून के साथ संघर्ष में आए बच्चों से जुड़े मामलों को देखता है। इस प्रकार भारत में बाल संरक्षण की संस्थागत व्यवस्था ने बाल-अधिकार आंदोलन को व्यावहारिक आधार प्रदान किया और बच्चों के प्रति दंडात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर संरक्षण, सुधार, पुनर्वास और गरिमा पर आधारित दृष्टिकोण को मजबूत किया।

मानवाधिकार आंदोलन और बाल-अधिकार : ऐतिहासिक संबंध : भारत में मानवाधिकार आंदोलन और बाल-अधिकार के विकास का संबंध लंबे सामाजिक और ऐतिहासिक परिवर्तन से रहा है। बाल-अधिकार की चेतना किसी एक कानून या संस्था के माध्यम से अचानक विकसित नहीं हुई, बल्कि सामाजिक सुधार, शिक्षा के विस्तार, राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक विकास और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विचारों के क्रमिक प्रभाव से इसका स्वरूप विकसित हुआ। प्रारंभिक सामाजिक सुधार आंदोलनों ने बाल विवाह, अशिक्षा और सामाजिक असमानता जैसी समस्याओं पर प्रश्न उठाए तथा बच्चों और विशेष रूप से बालिकाओं की शिक्षा की आवश्यकता को सामने रखा। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान समानता, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा जैसे विचारों को व्यापक समर्थन मिला और शिक्षा तथा बच्चों के विकास को राष्ट्र निर्माण से जोड़कर देखा जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने इन विचारों को अधिकार और राज्य के दायित्व के रूप में अधिक स्पष्ट आधार प्रदान किया। इसके बाद विभिन्न कानूनों और संस्थाओं के माध्यम से बाल संरक्षण और विकास की व्यवस्था को मजबूत किया गया।

भारत में मानवाधिकार आंदोलन और बाल-अधिकार के ऐतिहासिक संबंध को मोटे तौर पर चार चरणों में समझा जा सकता है। पहला चरण कृषिसामाजिक सुधार का चरण, जिसमें शिक्षा के प्रसार तथा बाल विवाह और अन्य सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध चेतना विकसित हुई। दूसरा चरण कृषारष्ट्रीय आंदोलन का चरण, जिसमें शिक्षा, समानता और सामाजिक न्याय को स्वतंत्रता तथा राष्ट्र निर्माण के व्यापक विचारों से जोड़ा गया। तीसरा चरण कृषासंवैधानिक चरण, जिसमें स्वतंत्र भारत के संविधान ने बच्चों की शिक्षा, सुरक्षा और विकास के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान किए। चौथा चरण कृषाधुनिक मानवाधिकार चरण, जिसमें अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था और बाल अधिकार अभिसमय के प्रभाव से बच्चों को स्वतंत्र अधिकार-धारी के रूप में देखने की समझ अधिक मजबूत हुई। इस प्रकार भारत में बाल-अधिकार आंदोलन सामाजिक सुधार से शुरू होकर राष्ट्रीय चेतना, संवैधानिक संरक्षण और आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण तक विकसित हुआ। यह विकास भारतीय समाज में बच्चों की स्थिति को कल्याण के विषय से आगे बढ़ाकर अधिकार, समानता, सुरक्षा और गरिमा के प्रश्न से जोड़ता है।

समकालीन भारत में बाल-अधिकार की चुनौतियाँ : कानूनों और संस्थागत व्यवस्थाओं के विकास के बावजूद समकालीन भारत में बाल-अधिकारों की प्राप्ति के सामने अनेक चुनौतियाँ बनी हुई हैं। गरीबी, कुपोषण, विद्यालय से बाहर रहने वाले बच्चे, बाल श्रम, बाल विवाह, बाल तस्करी, घरेलू हिंसा और यौन शोषण जैसी समस्याएँ आज भी बच्चों के जीवन और विकास को प्रभावित करती हैं। बदलती तकनीकी परिस्थितियों के कारण बच्चों के सामने नए प्रकार के जोखिम भी सामने आए हैं। डिजिटल माध्यमों का अनुचित उपयोग, साइबर उत्पीड़न, अश्लील सामग्री तक पहुंच और बच्चों की निजी जानकारी की असुरक्षा जैसी समस्याएँ बाल संरक्षण के लिए नई चुनौती बन रही हैं। इन परिस्थितियों में केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनका प्रभावी क्रियान्वयन और बच्चों तक सुरक्षा एवं सहायता की वास्तविक पहुंच भी आवश्यक है।

बाल-अधिकारों की प्राप्ति में सामाजिक और आर्थिक असमानता की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण क्षेत्रों, आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों, प्रवासी श्रमिक परिवारों तथा सामाजिक रूप से वंचित समूहों के बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और सुरक्षा की सुविधाएँ कई बार समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। गरीबी के कारण कुछ बच्चों

को कम उम्र में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है, जबकि सामाजिक परिस्थितियाँ बाल विवाह और विद्यालय छोड़ने जैसी समस्याओं को बढ़ा सकती हैं। इसलिए समकालीन बाल-अधिकार की अवधारणा को केवल बच्चों को शोषण और हिंसा से बचाने तक सीमित नहीं किया जा सकता। बच्चे की गरिमा, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, सुरक्षा, अभिव्यक्ति और भागीदारी को एक-दूसरे से जुड़े अधिकारों के रूप में देखना आवश्यक है। इन अधिकारों की प्रभावी प्राप्ति के लिए परिवार, समाज, विद्यालय, राज्य और संस्थाओं के बीच समन्वित प्रयास आवश्यक हैं।

निष्कर्ष : भारत में मानवाधिकार आंदोलन का विकास सामाजिक सुधार, स्वतंत्रता संघर्ष, संवैधानिक विकास और विधिक परिवर्तन की लंबी प्रक्रिया से जुड़ा रहा है। बाल-अधिकार इसी व्यापक मानवाधिकार आंदोलन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रारंभ में बच्चों की स्थिति सुधारने के प्रयास शिक्षा और सामाजिक सुधार से जुड़े थे। धीरे-धीरे बाल विवाह, बाल श्रम, बाल शिक्षा और बाल संरक्षण जैसे विषय सार्वजनिक विमर्श तथा विधिक सुधार का हिस्सा बने। सामाजिक सुधार आंदोलनों ने बच्चों के प्रति समाज की सोच में परिवर्तन लाने का आधार तैयार किया।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने बाल-अधिकारों के लिए मजबूत आधार प्रदान किया। समानता, शिक्षा, शोषण से सुरक्षा और बच्चों के विकास से संबंधित संवैधानिक प्रावधानों ने राज्य की जिम्मेदारी को स्पष्ट किया। अनुच्छेद 21क और बालकों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 ने शिक्षा को बच्चों के अधिकार के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार बाल श्रम और बाल विवाह के विरुद्ध बनाए गए कानूनों ने बच्चों की सुरक्षा को विधिक आधार दिया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाल अधिकार अभिसमय, 1989 तथा भारत द्वारा 1992 में उसके अनुमोदन ने भारतीय बाल-अधिकार व्यवस्था को व्यापक मानवाधिकार दृष्टिकोण से जोड़ा।

फिर भी गरीबी, सामाजिक असमानता, अशिक्षा, बाल श्रम, बाल विवाह और शोषण जैसी समस्याएँ चुनौती बनी हुई हैं। इसलिए बाल-अधिकार को केवल कानूनी विषय न मानकर सामाजिक न्याय, समान अवसर और मानव गरिमा से जुड़े व्यापक प्रश्न के रूप में देखना आवश्यक है। ऐतिहासिक रूप से इसका विकास सामाजिक सुधार से मानवाधिकार और संरक्षण से अधिकार एवं गरिमा की ओर बढ़ने वाली प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. भारत का संविधान। नई दिल्ली : भारत सरकार, 1950।
2. बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929। नई दिल्ली : भारत सरकार, 1929।
3. बालक और किशोर श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986। नई दिल्ली : भारत सरकार, 1986।
4. बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006। नई दिल्ली : भारत सरकार, 2006।
5. बालकों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009। नई दिल्ली : भारत सरकार, 2009।
6. बाजपेयी, आशा। चाइल्ड राइट्स इन इंडिया : लॉ, पॉलिसी एंड प्रैक्टिस। नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003।
7. बक्शी, उपेंद्र। द क्राइसिस ऑफ द इंडियन लीगल सिस्टम। नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस, 1982।
8. गांधी, मोहनदास करमचंद। हिन्द स्वराज अथवा इंडियन होम रूल। अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन, 1909।
9. नेहरू, जवाहरलाल। भारत की खोज। नई दिल्ली : जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल फंड, 1946।
10. सेन, अमर्त्य। डेवलपमेंट ऐज फ्रीडम। नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999।
11. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय। राष्ट्रीय बाल नीति। नई दिल्ली : भारत सरकार, 2013।
12. शिक्षा मंत्रालय। राष्ट्रीय शिक्षा नीति। नई दिल्ली : भारत सरकार, 2020।
13. वार्षिक रिपोर्ट 2022-23। नई दिल्ली : राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, 2023।
14. वार्षिक रिपोर्ट 2022-23। नई दिल्ली : राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, 2023।
15. वर्ल्ड रिपोर्ट ऑन चाइल्ड लेबर। जिनेवा : अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन, 2017।
16. द हिन्दू। चेन्नई, 2024।
17. द इंडियन एक्सप्रेस। नई दिल्ली, 2024।
18. हिन्दुस्तान। नई दिल्ली, 2024।
19. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली। मुंबई, 2024।
20. इंडियन जर्नल ऑफ ह्यूमन राइट्स। नई दिल्ली, 2024।

•